THE ECONOMIC TIMES

Date: 11-08-25

How Our Farmers are Denied Their Place

Price supports, inefficient signalling mechanism

ET Editorials

Trade talks with the US are embroiled in market access India is ready to allow for agriculture, one of the economy's most protected sectors. The reason for Indian sensitivity over increased risks to farming through trade is well-documented market failure. The structure of India's agriculture does not promote high-yielding crops, and output remains volatile because of climate dependence. Farming is undercapitalised due to small holdings and inadequate public investment in irrigation. Access to tech is limited by private sector investments in soil use. Seed development and productivity growth have to rely on subsidised farm inputs such as fertilisers. Price supports are an inefficient signalling mechanism that leads to unbalanced development of farm output.

Reforms have been in the works for decades. Land use remains the most nettlesome area, partly because it is decided by states. Tied to the issue of land titles are agricultural credit and crop insurance. Irrigation poses its own set of problems through demand for free electricity that chokes investment in power generation. Subsidising fertilisers feeds into India's import dependency and creates second-order effects on sustainability of farming in the country. Inadequate investment in warehousing causes enormo- us wastage. MSPs for cereals expose India's deficiency in plant protein and vegetable oil production.

There is no single solution. Any prescription does affect a very large segment of the country's population, especially in perception. India is now among the largest producers of a variety of crops. Yet, its yields remain low by international standards. Farmers have internalised their entitlements as successive governments share the wise counsel of eking out incremental gains through reforms. The result is farming has been overshadowed by liberalisation of the rest of the economy. Agriculture is not expected to lead India's export push. But, soon, India's policymakers will have to grapple with how to open up access to a global marketplace for its farmers they are denied.

दैनिक जागरण

Date: 11-08-25

घुसपैठ के कहर से बचाया जाए लोकतंत्र

विकास सारस्वत, (लेखक इंडिक अकादमी के सदस्य एवं वरिष्ठ स्तंभकार हैं)

भारत की पूर्वी सीमाओं से घुसपैठ एक बड़ी समस्या रही है और इसके कारण लंबे समय तक चलने वाले खूनी संघर्ष भी हुए हैं। देश का दुर्भाग्य है कि ऐस गंभीर मुद्दा क्षुद्र राजनीति का मैदान बनता रहा है। नागरिकता संशोधन कानून यानी सीएए और राष्ट्रीय नागरिकता रजिस्टर यानी एनआरसी के विरोध के दौरान विपक्ष और कुछ बुद्धिजीवियों ने भारत सरकार के उन प्रयासों का विरोध किया था जिसमें घुसपैठियों को वास्तविक शरणार्थियों से अलग किया जा पाता। अब फिर बिहार में मतदाता सूचियों के विशेष गहन पुनरीक्षण का आक्रामक विरोध हो रहा है। कई रिपोर्टों के अनुसार बिहार के कई जिलों में लोगों की संख्या से अधिक तो आधार कार्ड बने हुए हैं। मुस्लिम बहुल सीमांचल के जिलों में यह दर काफी अधिक है। हालांकि हिंदू बहुल जिलों में भी स्थिति बहुत अलग नहीं हैं। कुछ लोगों की दलील है कि चूंकि जनगणना के आंकड़े 14 वर्ष पुराने हैं, इसलिए कुछ स्थानों पर आधार की सौ प्रतिशत से ऊपर संतृप्ति दर संभव है। चिंताजनक बात वहां है जहां यह अंतर 15-20 प्रतिशत से ऊपर है। ऐसे अधिकांश जिले मुस्लिम बहुल सीमांचल में हैं। ऐसे में सवाल यह उठना चाहिए कि क्या इसी प्रकार के रुझान दिखाने वाले अन्य राज्य भी घुसपैठ के शिकार तो नहीं हैं? गत वर्ष टाटा इंस्टीट्यूट आफ सोशल साइंस की एक रिपोर्ट में यह सामने आया था कि मुंबई में चुनावों को प्रभावित करने के लिए कुछ एनजीओ बांग्लादेशियों और रोहिंग्याओं के वोट बनवाते हैं। इस वर्ष जनवरी में दिल्ली पुलिस ने कई बांग्लादेशी घुसपैठियों को पकड़ा था जिनके पास असली आधार और वोटर कार्ड मिले थे। अब बिहार की मतदाता पुनरीक्षण कवायद में लाखों लोगों का नदारद पाया जाना चुनाव आयोग की कार्रवाई के औचित्य को सही ठहराता है।

वैसे तो घुसपैठ कई समस्याओं को जन्म देती है, लेकिन चुनावी दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह देश की संप्रभुता को सीधी-सीधी चुनौती है। रक्तरंजित असम आंदोलन की शुरुआत भी ऐसे ही एक मुद्दे से हुई थी। वर्ष 1979 में असम के मंगलदोई लोकसभा उपचुनाव से पहले 26,000 बांग्लादेशी घुसपैठियों के नाम मतदाता सूची में पाए गए। 1975 से चुनाव आयोग लगातार विदेशियों के नाम सूची से हटाने के आदेश दे रहा था, परंतु केंद्र और राज्य सरकार के दबाव में आदेशों की अनदेखी होती रही। 1978 में तत्कालीन मुख्य चुनाव आयुक्त एसएल शकधर ने तो यहां तक कहा कि एक राजनीतिक दल ने अपने राजनीतिक लाभ के लिए मतदाता सूची में विदेशियों के नाम जुड़वाए हैं। उनका इशारा कांग्रेस की तरफ था। उस वक्त असम में हुए चुनावों के नतीजे इन आरोपों की पुष्टि भी करते हैं। 1977 के लोकसभा चुनावों में जब पूरे उत्तर भारत में कांग्रेस का सफाया हो गया तब इन्हीं संदिग्ध मतदाताओं के सहारे पार्टी असम की 14 में से 10 सीटें जीत गई। बाद में जनता पार्टी शासन में हुए 1978 के विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को 126 में से केवल नौ सीटों पर सफलता मिली। इन नौ सफल उम्मीदवारों में से एक अनवरा तैमूर थीं, जिनकी दलगांव सीट पर जीत का अंतर 9,200 वोट का था। दलगांव सीट भी मंगलदोई लोकसभा निर्वाचन क्षेत्र का हिस्सा है। कुछ माह के भीतर इस विधानसभा सीट पर 14,400 घुसपैठियों के नाम मतदाता सूची से हटाए गए, परंतु अनवरा विधायक बनी रहीं। 1980 में राजनीतिक उठापटक

के चलते राज्य की जनता पार्टी सरकार अल्पमत में आई और कांग्रेस ने अनवरा तैमूर को असम का मुख्यमंत्री बनाया। जिस मंगलदोई क्षेत्र में हुई धांधली के विरोध में आल असम स्टूडेंट यूनियन आसू ने अपना आंदोलन छेड़ा, वहीं से निर्वाचित एक विधायक को मुख्यमंत्री बनाना जो स्वयं घुसपैठियों के बलबूते जीती हों, जले पर नमक छिड़कने के समान था। मुख्यमंत्री बनने के बाद अनवरा का पहला निर्णय मतढ़ता सूचियों में विदेशियों की पहचान रोकने का रहा। केंद्र के दबाव में आयोग बदले आदेश में कहा कि मतदाता सूची में किसी भी व्यक्ति को वोट डालने से न रोका जाए और मतदाता सत्यापन की कार्रवाई चुनाव बाद ही की जाए। इस प्रयास का लाभ कांग्रेस को मिला और आगामी 1983 विधानसभा चुनावों में कांग्रेस को 91 सीट मिलीं।

असम के अलावा घुसपैठिये अन्य राज्यों के चुनावों को भी प्रभावित कर रहे हैं। लगभग 25 साल पुराने एक अध्ययन में 'सेंटर फार द स्टेट एंड साउथईस्ट एशिया स्टडीज' ने पाया कि बंगाल की 292 विधानसभा सीटों में से 52 सीटों पर घुसपैठिए निर्णायक भूमिका में आ गए हैं जबकि 100 अन्य सीटों पर वह नतीजों को प्रभावित कर सकते हैं। जाहिर हैं दो दशक बाद आज स्थिति और खराब हुई होगी। 1993 में जनसांख्यिकीविद बलजीत राय ने अविभाजित बिहार में आप्रवासियों की संख्या बंगाल और असम से लगभग आधी बताई थी। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि बिहार और झारखंड के चुनावी परिदृश्य पर भी आप्रवासियों का कितना प्रभाव पड़ा होगा। असम के चुनावी परिदृश्य पर पड़ने वाले प्रभाव पर तो 2008 में गुवाहाटी उच्च न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा था कि 'असम में बड़ी संख्या में बांग्लादेशी विधानसभा और संसद के लिए प्रतिनिधियों के चुनाव में और परिणाम स्वरूप राष्ट्रीय निर्णय लेने की प्रक्रिया में प्रमुख भूमिका निभा रहे हैं।' बंगाल के मालदा से लवली खातून नाम की एक तृणमूल कांग्रेस नेत्री को फरवरी में ग्राम प्रधान के पद से इसलिए हटाना पड़ा, क्योंकि वह बांग्लादेशी नागरिक थी । तृणमूल की बांग्लादेशी घुसपैठियों के प्रति सहानुभूति तो जगजाहिर है। पार्टी नेता खोकन दास यह कहते सुने गए कि केवल उन्हीं बांग्लादेशी आप्रवासियों के नाम मतदाता सूची में जोड़े जाएं जो तृणमूल को वोट देंगे।

निःसंदेह देश के प्रत्येक नागरिक का नाम मतदाता सूची में होना चाहिए, परंतु यदि विदेशी घुसपैठिये वोट डाल रहे हैं तो यह लोकतंत्र पर धब्बा है। विपक्ष के रख से साफ है कि वह घुसपैठियों के खिलाफ कार्रवाई पर आम सहमति नहीं बनने देगा। इसलिए केंद्र और चुनाव आयोग को दृढ़ इच्छाशक्ति के साथ तमाम विरोध के बावजूद अपना दायित्व पूरा करना होगा। यह भी सुनिश्चित करना होगा कि भ्रष्ट नौकरशाही अवैध आव्रजन पर कार्रवाई को असम एनआरसी की तरह विफल न कर दे।

बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 11-08-25

तार्किक ढंग से निर्णय ले भारत

संपादकीय

अमेरिका द्वारा भारतीय आयात पर 25 फीसदी के जवाबी शुल्क के बाद 25 फीसदी का ही अतिरिक्त शुल्क लगाए जाने से देश मुश्किल हालात में पहुंच गया है। व्हाइट हाउस के व्यापार सलाहकार पीटर नवारो ने गत सप्ताह कहा कि अतिरिक्त शुल्क राष्ट्रीय सुरक्षा संबंधी चिंताओं को देखते हुए लगाया गया है क्योंकि भारत लगातार रूस से कच्चे तेल का आयात कर रहा है। जैसा कि अमेरिकी राष्ट्रपति डॉनल्ड ट्रंप ने भी रेखांकित किया, व्यापक विचार यह है कि भारत द्वारा रूसी तेल का आयात यूक्रेन युद्ध में रूस के लिए मददगार हो रहा है। अगर ऐसा है तो अमेरिका को पहले चीन को निशाना बनाना चाहिए था। वह न केवल भारत की तुलना में अधिक तेल और गैस रूस से खरीद रहा है बल्कि कई अन्य तरीकों से भी उसकी मदद कर रहा है। परंतु अमेरिका ने ऐसा नहीं किया । शायद यह डर रहा है कि चीन की ओर से इसका तगड़ा प्रतिरोध होगा। ट्रंप और रूसी राष्ट्रपति ब्लादीमिर पुतिन इस सप्ताह मिलकर यूक्रेन युद्ध पर चर्चा करने वाले हैं। भारत ने इसका स्वागत किया है हालांकि यह स्पष्ट नहीं है कि वहां किसी तरह का हल निकलने पर जुर्माने की धमकी खत्म होगी या नहीं। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने भी गत सप्ताह पुतिन से विस्तार से बातचीत की।

मौजूदा परिदृश्य अनिश्चित नजर आ रहा है और भारत को अब दुर्भाग्यपूर्ण हकीकत से निपटने की तैयारी शुरू कर देनी चाहिए। हम अपने सबसे बड़े निर्यात बाजार को यूँ हाथ से जाने नहीं दे सकते। वर्ष 2024-25 में भारत ने 86.5 अरब डॉलर मूल्य की वस्तुएं अमेरिका को निर्यात की और हमारा व्यापार अधिशेष 41 अरब डॉलर रहा। इलेक्ट्रॉनिक्स और औषधि उत्पादों को फिलहाल शुल्क से छूट प्रदान की गई है लेकिन कुछ कहा नहीं जा सकता है कि कब इन पर भी ऐसी ही शुल्क दर पोष दी जाएंगी। भारत अमेरिका को कई कम मार्जिन वाली चीजों का निर्यात करता है और ऐसे में ये क्षेत्र पूरी तरह कारोबार से बाहर हो जाएंगे। जैसा कि हमने इस समाचार पत्र में गत सप्ताह प्रकाशित भी किया था, उदाहरण के लिए वस्त्र उद्योग के कई वैश्विक ब्रांडों ने अपने भारतीय आपूर्तिकर्ताओं से कहा है कि वे तब तक अपने ऑर्डर रोक कर रखें जब तक कि शुल्क को लेकर स्पष्टता नहीं आ जाती है। भारत ने 2024 में अमेरिका को 10.8 अरब डॉलर मूल्य के कपड़े एवं वस्त्र निर्यात किए। अन्य क्षेत्रों पर भी प्रभाव पड़ेगा और बड़े पैमाने पर रोजगार नष्ट होने की भी आशंका है।

यह सही है कि ट्रंप ने इस विषय में किसी भी बातचीत से इनकार किया है लेकिन भारत को निरंतर बातचीत के प्रयास जारी रखने चाहिए। इसमें कोई दो राय नहीं कि भारत को यह तय करने का अधिकार है कि वह किसी देश के साथ किस तरह का रिश्ता रखेगा लेकिन इसके साथ ही उसे असाधारण हालात से भी निपटने की तैयारी रखनी चाहिए ताकि उसके हितों की रक्षा हो सके। यह ध्यान देने लायक है कि भारत का रूस के साथ बहुत गहरा और पुराना रिश्ता है। इसके रिश्ते को दरकिनार नहीं किया किया जा सकता है। बहरहाल, मौजूदा हालात से निपटने के लिए भारत अपने तेल आयात को टुकड़ों में रूस से बंद कर सकता है। हाल में ऐसा देखा भी गया

है। भारत ने रूसी तेल का आयात इसलिए शुरू किया था क्योंकि पश्चिमी प्रतिबंधों के कारण वह रियायती दरों पर उपलब्ध था। परंतु यह रिवायत भी काफी कम हुई है इस समाचार पत्र द्वारा किया गया विश्लेषण बताता है कि भारत ने जनवरी 2022 से जून 2025 के बीच केवल 15 अरब डॉलर की राशि बचाई।

नोमूरा के एक शोध में गत सप्ताह इस बात को रेखांकित किया गवा कि चालू वर्ष में प्रति बैरल केवल 2.2 डॉलर की छूट मिल रही है। अगर भारत अपने आयात को बदलता है तो इसकी सालाना अतिरिक्त लागत करीब 1.5 अरब डॉलर की होगी। बहरहाल, यह बदलाव वैश्विक तेल कीमतों को बढ़ा सकता है, हालांकि उपलब्ध क्षमता और मांग के कारण वह इजाफा बहुत सीमित रहेगा। चूंकि भारत का चालू खाते का घाटा बहुत अधिक नहीं है इसलिए इस बदलाव का प्रबंधन किया जा सकता है। वास्तव में अमेरिकी बाजारों के लगभग बंद हो जाने का चालू खाते के घाटे पर अधिक असर हो सकता है। यह वृद्धि और रोजगार पर असर डाल सकता है। ऐसे में भारत के लिए बेहतर यही होगा कि यह अमेरिका के पूरी तरह विरुद्ध हो जाने के बजाव तार्किक ढंग से निर्णय ले

Date: 11-08-25

अमेरिका की दबंगई और भारत के समक्ष अवसर

टीएन नाइनन, (लेखक बिजनेस स्टैंडर्ड के संपादक और चेयरमैन रह चुके हैं)

आठ जुलाई 1853 को कमोडोर मैथ्यू पेरी दो भाप इंजन वाले जहाजों और दो पाल वाली छोटी नावों के साथ टोक्यो की खाड़ी में पहुंचे। जब उन्हें विदेशी पोतों की इजाजत वाले नागासाकी बंदरगाह जाने का आदेश दिया गया तो उन्होंने उसे नकार दिया। इसी तरह उन्होंने स्थानीय अधिकारियों को अपने पोतों पर नहीं आने दिया और जोर दिया कि वह जापानी सम्राट के लिए अमेरिकी राष्ट्रपति का संदेश लेकर आए हैं। पेरी के इस तरह दबाव बनाने के बाद जापान को अपना व्यापार खोलना पड़ा, अमेरिकी पोतों को जापानी बंदरगाहों पर ईंधन भरने की इजाजत देनी पड़ी और दूसरी रियायतें भी देनी पड़ीं।

इससे भी अहम, इससे जापान को पश्चिमी तकनीकी की श्रेष्ठता का पता चला क्योंकि उस समय तक उसके पास केवल लकड़ी से बने जहाज थे। क्या करना है इसे लेकर भ्रम और असहमति थी। ऐसे भी लोग थे जो बदलाव के विरुद्ध थे। कुछ लोगों ने सुझाव दिया कि सभी विदेशियों को निकाल बाहर किया जाए। आखिरकार, बदलाव लाने वाली शक्तियों की जीत हुई और एक दशक से कुछ अधिक समय बाद नए और युवा सम्राट मेइजी के अधीन देश ने आमूलचूल सुधारों की घोषणा की। सामंती व्यवस्था, भूस्वामित्व, शिक्षा व्यवस्था और सेना सहित तमाम क्षेत्रों में बदलाव किए गए। शोगुन शासन का अंत हुआ और 1867 में मेइजी पुनरुद्धार आरंभ हुआ ।

एक पीढ़ी के भीतर जापान एक औद्योगिक शक्ति बन गया और उसने जंग में अपने से ताकतवर चीनी सेना को पराजित कर दिया। एक दशक बाद उसने साम्राज्यवादी रूस को हराया। उन दोनों देशों की शासन व्यवस्था सैन्य पराजय के बाद ढह गई। कमोडोर पेरी ने जो बदलाव जापान पर थोपा, उसने उसे दुनिया के अग्रिम देशों की जमात में ला खड़ा किया। हालांकि तुलना नहीं करनी चाहिए लेकिन इसमें भारत के लिए भी सबक हैं क्योंकि अमेरिकी दादागीरी उसके सामने भी ऐसा अवसर ला सकती है जैसा पेरी के साथ अमेरिकी दबंगई ने जापान को दिया।

यह ट्रंप के कदमों का बचाव करने की कोशिश नहीं है क्योंकि वे तो बचाव योग्य हैं ही नहीं। भारत का उनके द्वारा लगाए गए शुल्क को अनुचित अविवेकपूर्ण और पाखंडी बताना सही है। परंतु हमें तर्क में जीत हासिल करना नहीं बल्कि आर्थिक युद्ध में जीत हासिल करना है। हमारी कमजोरियां उजागर हो चुकी हैं क्योंकि हम ट्रंप के सामने उस तरह नहीं खड़े हो सके जैसे चीन खड़ा हुआ। ट्रंप की कही बातों में सचाई भी है। सस्ता रूसी तेल इस्तेमाल करके रिफाइनरों ने अतिरिक्त मुनाफा कमाया जबकि खुदरा उपभोक्ताओं को कोई लाभ नहीं हुआ। हमारे शुल्क भी गलत दिशा में रहे जिनके चलते हमें 'टैरिफ किंग' का नाम दिया गया।

हकीकत यही है कि हम व्यापार के मामले में लंबे समय से पराये बने रहे हैं। हमने एशिया के क्षेत्रीय व्यापार समझौतों का हिस्सा बनने में रुचि नहीं ली। तीन दशक से अधिक समय से 6 फीसदी से अधिक की वृद्धि दर के बावजूद और प्रति व्यक्ति आय को चार गुना तक सुधार लेने के बावजूद हमारे 90 फीसदी रोजगार अभी भी असंगठित क्षेत्र में हैं। इससे उत्पादकता वृद्धि और तकनीकी प्रगति दोनों प्रभावित हो रहे हैं।

मौजूदा दौर को बहुध्रुवीय बताना भले ही हमारे लिए कूटनीतिक दृष्टि से उपयोगी हो और हमारे विदेश मंत्री ने पश्चिम के दोहरे मापदंडों को रेखांकित किया हो लेकिन तथ्य यही है कि दुनिया में अभी भी दो ही प्रमुख ध्रुव हैं। उनमें से एक हमारा शत्रु नहीं तो भी हमारे विरुद्ध है। उसने हम पर सैन्य दबाव डाला है और अहम आपूर्तियों के मामले में भी हमें तंग किया है। भविष्य में वह ऐसे और कदम उठा सकता है। अगर अब हम अमेरिका के साथ भी शत्रुतापूर्ण रुख अपना लेते हैं तो खुद को एक कोने में धकेल बैठेंगे। हमें अमेरिका से निपटने का तरीका निकालना होगा। वैसे ही जैसे हमें चीन की विनिर्माण शक्तियों का तोड़ निकालना है। दोनों से बेरुखी हमारे हित में नहीं है।

अमेरिका के साथ हमारा बहुत कुछ दांव पर है। वह हमारी वस्तुओं का सबसे बड़ा निर्यात बाजार है, हमारे सेवा निर्यात का प्राथमिक बाजार है और विदेशी मुद्रा का सब से बड़ा स्रोत भी है। हमारे इंजीनियरों की तकनीकी क्षमता ने दर्जनों बड़ी अमेरिकी कंपनियों को प्रोत्साहित किया है कि वे भारत में क्षमता केंद्र स्थापित करें, डॉलर कमाएं और बड़े पैमाने पर गुणवत्तापूर्ण रोजगार प्रदान करें। इसके अलावा हम रणनीतिक रिश्ते भी कायम कर रहे हैं और जनता के बीच भी जबरदस्त आपसी रिश्ता है क्योंकि करीब 50 लाख भारतीय मूल के लोग अमेरिका में रहते हैं। हम एच1बी वीजा के सबसे बड़ी लाभार्थी हैं जबकि अमेरिकी विश्वविद्यालय विदेश में पढ़ने की चाह रखने वाले भारतीय विद्यार्थियों की पहली पसंद हैं।

ट्रंप इनमें से कुछ नीतियों को पलटना चाहते हैं। अमेरिका में भी वर्क वीजा और आउटसोर्सिंग के खिलाफ जनमत तैयार हुआ है। इसके अलावा ट्रंप ने अमेरिकी साझेदारों और मित्रों को शत्रु भी बनाया है । मिसाल के तौर पर रूसी तेल के लिए भारत पर हमलावर हुए लेकिन चीन के बारे में कुछ नहीं कहा। इससे अविश्वास का माहौल बना है। इसके बावजूद वह बात सही है जो मनमोहन सिंह ने एक बार निजी बातचीत में कही थी। उन्होंने कहा था कि अगर आप अमेरिका के मित्र के रूप में नजर आते हैं तो दुनिया आपके पक्ष में होती है। आज दुनिया में ऐसा कोई देश नहीं है जो अमेरिका की जगह ले सके। रूस उपयोगी मित्र और रक्षा साझेदार है लेकिन ब्रिक्स और ग्लोबल साउथ के विकल्प बनने जैसी बातें पूरी तरह भ्रम हैं।

मोदी सरकार ने आर्थिक स्थिरता कायम करने, आर्थिक अधोसंरचना तैयार करने, बुनियादी वस्तुओं और सेवाओं मसलन पानी, गैस, शौचालय, आवास आदि की अवस्था सुधारने तथा विशिष्ट डिजिटल ढांचा तैयार करने में अच्छा काम किया है लेकिन अन्य क्षेत्रों में उसका काम उपयोगी नहीं रहा है। सन 1991 के सुधार अधूरे थे और तथाकथित दूसरी पीढ़ी के सुधार अपर्याप्त साबित हुए। उदाहरण के लिए हमें यह सवाल करना होगा कि आखिर क्यों चीन उर्वरकों के बड़े आयातक से निर्यातक बन गया जबकि हम अभी तक आयातक ही हैं और चीन से उर्वरक खरीद रहे हैं। क्या इसमें हमारी भ्रमित मूल्य और सब्सिडी नीतियों की भूमिका है? इसी तरह आखिर क्यों हमारी कृषि को 40 फीसदी शुल्क दर का कवच चाहिए? क्या हमारी कम उत्पादकता के चलते जिसे अब तक ठीक नहीं किया जा सका है ?

ऐसी नाकामियों के चलते ही हम व्यापार के मोर्चे पर रक्षात्मक हैं और हमारी शुल्क दरें कम होने के बजाय बढ़ी हैं। पांच साल पहले घोषित नई शिक्षा नीति के साथ समुचित प्रगति नहीं हुई है। विनिर्माण का केंद्र बनने की हमारी कोशिशें मोबाइल फोन असेंबली से आगे नहीं बढ़ सकी हैं और हमारे रोजगार की हालत गंभीर बनी हुई है। अधिक से अधिक लोग कृषि अथवा स्वरोजगार की शरण में हैं। हमारे रक्षा क्षेत्र में समुचित फंडिंग नहीं है। कारोबारी मोर्चे पर चुनिंदा घरानों के पास बहुत अधिक शक्ति केंद्रित है। यह जापान और कोरिया के उलट है जहां कंपनियां विश्व स्तर पर नेतृत्व कर रही हैं। भारतीय कंपनियां देश के बाहर अपनी छाप नहीं छोड़ सकी हैं। हमारा शुद्ध प्रत्यक्ष विदेशी निवेश करीब शून्य पहुंच गया है और इसमें भी एक संदेश छिपा है।

अगर ट्रंप हमारे साथ दादागीरी कर पा रहे हैं तो इसलिए क्योंकि हम ऐसा होने दे रहे हैं। अगर अमेरिका हमें चीन के मुकाबले पहले से कमतर आंकता है, तो ऐसा इसलिए क्योंकि हम वृद्धि दर के अलावा अन्य मामलों में काफी कमजोर प्रदर्शन करते रहे हैं। ट्रंप हम पर जो कीमत थोप रहे हैं उससे बचना मुश्किल है। परंतु हमें भावनाओं में बहने के बजाय समझदारी भरे चयन करने होंगे। हममें यह क्षमता है कि इस झटके को सहकर यहां से नए सिरे से आगे बढ़ सकें। हमें एक दबंग देश से निपटने के क्रम में इस काम पर ध्यान देना चाहिए। 19वीं सदी के मध्य के जापान से तुलना अतिशयोक्तिपूर्ण हो सकती है लेकिन यह हमारे सामने वैसा ही अवसर हो सकता है जैसा पेरी के समय जापान के सामने आया था।

जनसत्ता

Date: 11-08-25

ग्रामीण विकास को गति देती पंचायतें

सुशील कुमार सिंह

भारत में पंचायत को सुशासन की दृष्टि से देखें, तो लोक सशक्तीकरण इसकी पूर्णता है और लोक विकेंद्रीकरण की नजर से देखें, तो यह एक ग्रामीण स्वशासन की परिपाटी की पूर्ति है जो ग्रामीण विकास के लिए कहीं अधिक जरूरी है। इतना ही नहीं यह गांधी के ग्राम- स्वराज के सपने को भी बल देता है। सुशासन शांति और खुशहाली का परिचायक है। जबकि पंचायत एक ऐसी संस्था है जो ग्रामीण स्वराज को आगे बढ़ाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती है। भारत में 6.65 लाख गांव हैं, जिनमें 2.68 लाख ग्राम पंचायतें और ग्रामीण स्थानीय निकाय हैं, जो देश के ग्रामीण परिदृश्य का आधार हैं। पंचायतें ग्रामीण विकास को गति दे ही रही हैं, आम आदमी की भी ताकत बन रही हैं।

केंद्रीय बजट 2025-26 में ग्रामीण विकास को रफ्तार देने और केंद्रित कार्यक्रमों तथा निवेशों के जरिए समृद्धि बढ़ाने के उद्देश्य से कई प्रमुख पहल की गईं। मसलन वर्ष 2028 तक के लिए जल जीवन मिशन, ब्राडबैंड सुविधा, जिसका लक्ष्य यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में सभी सरकारी माध्यमिक विद्यालयों और प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों तक इंटरनेट पहुंच उपलब्ध हो तथा शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं में सुधार लाया जाए। इसके अतिरिक्त, भारतीय डाक उद्यमियों, सूक्ष्म लघु एवं मध्यम उद्यम यानी एमएसएमई और स्वयं सहायता समूहों का समर्थन करने वाले एक प्रमुख सार्वजनिक 'लाजिस्टिक्स' संगठन के रूप में विकसित करना भी लक्ष्य है। ग्रामीण समृद्धि एवं अनुकूलन कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण महिलाओं, युवा किसानों, हाशिए पर पड़े समुदायों और भूमिहीन परिवारों को सशक्त बनाने पर ध्यान केंद्रित करना है।

पंचायत लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का परिचायक है और सामुदायिक विकास कार्यक्रम इसकी नींव है। पंचायत जैसी संस्था की बनावट कई प्रयोगों और अनुप्रयोगों का भी नतीजा है। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का विफल होना और इसके बाद बलवंत राय मेहता समिति का गठन फिर वर्ष 1957 में उसी की रपट पर इसका मूर्त रूप लेना देखा जा सकता है। गौरतलब है कि जिस पंचायत को राजनीति से परे और नीति उन्मुख सजग प्रहरी की भूमिका में समस्या दूर करने का एक माध्यम माना जाता है, आज वही कई समस्याओं से जकड़ी हुई है। जिस पंचायत ने सबसे नीचे के लोकतंत्र को कंधा दिया हुआ है, वही कई जंजालों से मुक्त नहीं है, चाहे वित्तीय संकट हो या उचित नियोजन की कमी या फिर अशिक्षा, रूढ़िवादिता तथा पुरुष वर्चस्व के साथ जाति और ऊंच-नीच के पूर्वाग्रह

ही क्यों न हों। यह समस्या पिछले तीन दशकों में घटी तो हैं और इसी पंचायत ने यह सिद्ध भी किया है कि उसका कोई विकल्प नहीं है।

पंचायत की व्याख्या में क्षेत्र विशेष में शासन करने का विशिष्ट अधिकार निहित है। इसी अधिकार से उन दायित्वों की पूर्ति होती है जो ग्रामीण प्रशासन के अंतर्गत स्वशासन का बहाव भरता है और ग्रामीण बदलाव की गाड़ी रेखा खींचता है। वर्ष 1997 का नागरिक घोषणापत्र सुशासन का ही शिखर था और 2005 में सूचना का अधिकार इसी का अगला अध्याय इतना ही नहीं वर्ष 2006 की ई-गवर्नेंस योजना भी सुशासन की रूपरेखा को ही विस्तृत नहीं करती बल्कि इनसे पंचायत को भी ताकत मिलती है। वर्ष 1992 में सुशासन की अवधारणा सबसे पहले ब्रिटेन में सामने आई थी। वर्ष 1991 में उदारीकरण के बाद इसकी पहल भारत में भी देखी गई। सुशासन के इसी वर्ष में पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक स्वरूप दिया जा रहा था। संविधान के 73वें संशोधन में जब इसे सवैधानिक स्वरूप दिया गया, तब वर्ष 1959 से राजस्थान के नागौर से यात्रा कर रही यह पंचायत रूपी संस्था नए आभामंडल से युक्त हो गई। वर्ष 1992 में हुए इस संशोधन को 24 अप्रैल 1993 को लागू किया गया।

स्वशासन के संस्थान के रूप में इसकी व्याख्या दो तरीके से की जा सकती है। पहला संविधान में इसे सुशासन के रूप में निरूपित किया गया है, जिसका सीधा मतलब स्वायत्तता और क्षेत्र विशेष में शासन करने का पूर्ण अधिकार है। दूसरा यह प्रशासनिक संघीयकरण को मजबूत करता 1 गौरतलब है कि संविधान के इसी संशोधन में गांधी के ग्राम स्वराज को पूरा किया, मगर क्या यह बात भी पूरी शिद्दत से कही जा सकती है कि स्वतंत्र भारत की अति महत्त्वाकांक्षी संस्था स्थानीय स्वशासन से परिपूर्ण है। पंचायतों में एक तिहाई महिलाओं का आरक्षण इसी संशोधन के साथ सुनिश्चित कर दिया गया था जो मौजूदा समय में पचास फीसद तक है। देखा जाए तो तीन दशक से अधिक पुरानी संवैधानिक पंचायती राज व्यवस्था में व्यापक बदलाव आया है। राजनीतिक माहौल में सहभागी महिला प्रतिनिधियों के प्रति रूढ़िवादी सोच में अच्छा खासा बदलाव हुआ, जिसके परिणामस्वरूप वे भय, संकोच और घबराहट को दूर करने में कामयाब भी रही हैं।

लोकतांत्रिक विकेंद्रीकरण का ही परिणाम है कि पंचायतों की प्रतिष्ठा बढ़ी है। महिलाओं की भागीदारी भी सामने आ रही है। मगर राजनीतिक माहौल में अपराधीकरण, बाहुबल, जातिवाद और ऊंच-नीच आदि दुर्गुणों से पंचायतें भी मुक्त नहीं है। समानता पर आधारित सामाजिक संरचना का गठन सुशासन की एक कड़ी है। इसका लक्ष्य ऐसे समाज का निर्माण करना जहां शोषण न हो और सुशासन का प्रभाव हो, जिससे पंचायत में पारदर्शिता को बढ़ावा मिल सके। वर्ष 2011 की जनगणना के अनुसार देश में हर चौथा व्यक्ति अभी भी अशिक्षित है। पंचायत और सुशासन पर इसका प्रभाव देखा जा सकता है। कई महिला प्रतिनिधि ऐसी हैं जिनको पंचायत के नियम पढ़ने और लिखने में दिक्कत होती है। डिजिटल इंडिया का संदर्भ भी 2015 से देखा जा सकता है आनलाइन क्रियाकलाप और डिजिटलीकरण ने भी पंचायत से जुड़े ऐसे प्रतिनिधियों के लिए कमोबेश चुनौती पैदा की है। हालांकि देश की

ढाई लाख से अधिक पंचायतों में काफी हद तक डिजिटल संपर्क बाकी है। साथ ही बिजली आदि की आपूर्ति का कमजोर होना भी इसमें एक बाधा है।

डिजिटल क्रांति ने सुशासन पर गहरी छाप छोड़ी है। डिजिटल लेन-देन में तेजी आई है, कागजों के आदान-प्रदान में बढ़ोतरी हुई है, भूमि दस्तावेजों का डिजिटलीकरण हो रहा है। फसल बीमा कार्ड, मृदा स्वास्थ्य कार्ड और किसान क्रेडिट कार्ड सहित प्रधानमंत्री फसल बीमा जैसी योजनाओं में दावों के निपटारे के लिए 'रिमोट सेंसिंग', एआइ और 'माडलिंग टूल्स' का प्रयोग होने लगा है। वहीं ग्राम पंचायतों में खुले स्वास्थ्य सेवा केंद्रों में ग्रामीण महिलाओं की भागीदारी को भी प्रोत्साहित किया जा रहा है, ताकि वे ग्राम स्तरीय उद्यमी बनें सूचना और प्रौद्योगिकी का इस्तेमाल करते हुए शासन की प्रक्रियाओं का पूर्ण रूपांतरण ही 'ई- गवर्नेंस' कहलाता है, जिसका लक्ष्य आम नागरिकों को सभी सरकारी सेवाओं तक पहुंच प्रदान करते हुए पारदर्शिता और विश्वसनीयता सुनिश्चित करना है।

गौरतलब है कि राष्ट्रीय-गवर्नेंस कार्यक्रम के अंतर्गत प्रारंभ में 31 सेवाएं शामिल की गई थीं। इस प्रकार की अवधारणा सुशासन की परिपाटी को भी सुसज्जित करती है। पंचायती राज व्यवस्था आम लोगों की ताकत है और खास प्रकार की राजनीति से दूर है। यह ऐसी व्यवस्था है जो स्वयं द्वारा स्वयं पर शासन किया जाता है। बीते तीन दशकों में पंचायतें बदली हैं। इन सब में एक प्रमुख बात यह रही है कि महिलाएं तुलनात्मक रूप से अधिक सक्रिय हुई हैं। राज्य सरकारों का ऐसी संस्थाओं पर भरोसा बढ़ा है। गांवों में विकास को रफ्तार देने में इनकी भूमिका बढ़ी है।

राष्ट्रीय सहारा

Date: 11-08-25

पारदर्शिता और निष्पक्षता की दरकार

नृपेन्द्र अभिषेक नृप

लोकतंत्र का आधार चुनाव कराना ही नहीं, बल्कि चुनाव ऐसे कराना है कि इसकी निष्पक्षता, पारदर्शिता और विश्वसनीयता पर जनता का भरोसा बना रहे। हाल में लोक सभा में नेता प्रतिपक्ष राहुल गांधी द्वारा चुनाव आयोग पर लगाए गए आरोपों ने देश की चुनावी प्रक्रिया पर बहस को नये मोड़ पर ला खड़ा किया है। यह केवल

राजनीतिक विवाद नहीं, बल्कि लोकतंत्र की जड़ों को प्रभावित करने वाला गंभीर मसला है, जिसे न केवल राजनीतिक, बल्कि संवैधानिक और संस्थागत दृष्टि से भी परखना आवश्यक है।

राहुल ने अपने आरोपों में दावा किया है कि 2024 के आम चुनाव में बड़े पैमाने पर मतदाता सूचियों में फर्जी नाम जोड़े गए और असली मतदाताओं के नाम गलत तरीके से काटे गए। कांग्रेस पार्टी का कहना है कि महाराष्ट्र, हरियाणा, मध्य प्रदेश और अन्य राज्यों में भी यह प्रवृत्ति देखने को मिली है। विपक्ष का आरोप है कि यह सब भारतीय जनता पार्टी को चुनावी लाभ देने के उद्देश्य से किया गया जिससे मतदाता सूची में हेरफेर कर परिणामों को प्रभावित किया जा सके। चुनाव आयोग ने इन आरोपों को खारिज करने की बजाय 'हलफनामा' देने को कहा है। कर्नाटक समेत तीन राज्यों के मुख्य निर्वाचन अधिकारियों को निर्देश दिया है कि वे संबंधित मतदाताओं के नाम दें जिन पर आरोप है कि उनके नाम फर्जी तरीके से जोड़े या काटे गए हैं। आयोग का कहना है कि इन दावों की सटीक जांच के लिए तथ्यों और ठोस प्रमाण की आवश्यकता है, महज आरोप पर्याप्त नहीं आयोग का यह रुख जहां नियम सम्मत प्रतीत होता है, वहीं विपक्ष के आरोपों की गंभीरता को देखते हुए इनकी जांच में तत्परता और पारदर्शिता की मांग भी उतनी ही महत्त्वपूर्ण हो जाती है। विवाद केवल आंकड़ों और आरोपों का खेल नहीं है, बल्कि लोकतंत्र के मूल 'एक व्यक्ति, एक वोट' के सिद्धांत से भी जुड़ा है। यदि वाकई एक मतदाता के नाम पर कई वोट दर्ज हैं, तो यह सीधे-सीधे मतदान प्रक्रिया की पवित्रता का उल्लंघन है।

मतदाता सूची का सही और अद्यतन होना चुनाव की निष्पक्षता की पहली शर्त है। राहुल और विपक्षी दलों के आरोप फर्जी नाम जोड़ने तक सीमित नहीं हैं, बल्कि वे चुनाव आयोग की कार्यप्रणाली पर भी सवाल उठाते हैं। उनका कहना है कि आयोग मतदाता सूची में गड़बड़ी दूर करने के लिए आवश्यक तकनीकी और प्रशासनिक उपायों को पूरी तरह लागू नहीं कर रहा है। उदाहरणतः आयोग द्वारा घर-घर जाकर मतदाता सत्यापन प्रक्रिया शुरू की गई परंतु इसमें भी पारदर्शिता और जवाबदेही की कमी के आरोप लगते रहे हैं। कई बार फील्ड अधिकारियों पर राजनीतिक दबाव की आशंका जताई जाती है, जिससे गलत नाम सूची में बने रहते हैं, और सही नाम हटा दिए जाते हैं। चुनावी पारदर्शिता पर चर्चा करते समय तकनीकी पहलुओं को भी अनदेखा नहीं किया जा सकता। विपक्षी दलों का आरोप है कि आयोग चुनाव प्रक्रिया की निगरानी में पारदर्शिता नहीं बरत रहा । जैसे कि मतदान के बाद वीवीपैट पर्चियों की गिनती सीमित प्रतिशत में करना, सीसीटीवी फुटेज सुरक्षित नहीं रखना और मतदान केंद्रों से ईवीएम की आवाजाही के दौरान पर्याप्त सुरक्षा उपायों का अभाव। ये सभी ऐसे बिंदु हैं, जो जनता के मन में शंका पैदा करते हैं। चुनाव परिणाम की विश्वसनीयता पर भी असर डालते हैं।

उल्लेखनीय है कि आयोग द्वारा मतदाता सूची संबंधी डेटा को ऐसे प्रारूप में जारी नहीं किया जाता जो आसानी से विश्लेषण के लिए उपयुक्त हो। इसके कारण राजनीतिक दलों और नागरिक संगठनों को जांच-पड़ताल में कठिनाई होती है। यदि डेटा पारदर्शी और उपयोगी प्रारूप में उपलब्ध हो, तो स्वतंत्र संस्थाएं और मीडिया भी चुनावी प्रक्रिया पर निगरानी रख सकते हैं, और गड़बड़ी पकड़ने में मदद कर सकते हैं। इस पूरे विवाद का सबसे संवेदनशील पहलू है संस्थागत विश्वास का क्षरण । चुनाव आयोग जैसी संस्था का भरोसा केवल उसकी संवैधानिक

वैधता पर नहीं, बल्कि उसकी निष्पक्षता और पारदर्शिता पर टिका होता है। यदि जनता का विश्वास इससे उठने लगे तो लोकतंत्र की नींव ही हिल सकती है। यही कारण है। कि राहुल के आरोपों को राजनीतिक बयानबाजी मान कर टालना पर्याप्त नहीं, बल्कि इनकी निष्पक्ष और स्वतंत्र जांच होना आवश्यक है।

इस मुद्दे का समाधान राजनीतिक बहस से नहीं, बल्कि ठोस प्रशासनिक और कानूनी कदमों से ही संभव है। चुनाव आयोग को चाहिए कि मतदाता सूचियों का थर्ड पार्टी ऑडिट कराए, तकनीकी साधनों से डुप्लीकेट और फर्जी नामों की पहचान करे, और परिणामों को सार्वजनिक करे। मतदाता सत्यापन प्रक्रिया में जनता की भागीदारी भी बढ़ाई जाए। वीवीपैट गिनती के दायरे को बढ़ाना, सीसीटीवी फुटेज सुरक्षित रखना और ईवीएम की सुरक्षा को और मजबूत बनाना भी जरूरी है। लोकतंत्र की आत्मा तभी सुरक्षित रह सकती है, जब जनता का चुनाव प्रक्रिया में विश्वास रहे।

Live हिन्दुस्तान .com

Date: 11-08-25

आयोग का हलफनामा

संपादकीय

बिहार में मतदाता सूची विशेष गहन पुनरीक्षण (एसआईआर) को लेकर जैसे-जैसे खुलासे और दावे किए जा रहे हैं, वे चिंताजनक तो हैं ही चुनाव आयोग से अतिरिक्त सावधानी और पारदर्शिता की मांग भी करते हैं। शनिवार को आयोग ने सुप्रीम कोर्ट में हलफनामा देकर यह स्पष्ट किया है कि मतदाता सूची में पहले से दर्ज किसी भी योग्य वोटर का नाम उसे बिना नोटिस दिए और उसका जवाब सुने, नहीं हटाया जाएगा। निस्संदेह, यह शपथपत्र आश्वस्तकारी है। कोई भी देशभक्त और लोकतंत्र कामी नागरिक यही चाहेगा कि उसकी मतदाता सूची त्रुटिरहित हो, चुनाव की पूरी प्रक्रिया पारदर्शी हो और जनादेश को सभी पक्ष सम्मान करें। वैसे भी, भारतीय लोकतंत्र की प्रतिष्ठा का आधार सिर्फ इसका विशाल मतदाता वर्ग नहीं, बल्कि छिटपुट शिकायतों के बावजूद सभी पक्षों द्वारा इसके चुनावों की व्यापक निष्पक्षता को स्वीकारा जाना, जनादेश का सम्मान करना और सत्ता का निर्बाध हस्तांतरण रहा है। इसलिए मौजूदा विवाद को न सिर्फ चुनाव आयोग, बल्कि इससे जुड़े सभी पक्षों को पूरी गंभीरता से लेना चाहिए। खासकर बिहार के नागरिकों की यह अहम जिम्मेदारी बनती है कि वे आयोग के साथ पूरा सहयोग करें।

प्रारूप सूची के जारी होने के साथ ही एसआईआर का पहला चरण पूरा हो चुका है। आयोग का दावा है कि राज्य की पंजीकृत पार्टियों को इसकी प्रतियां भी सौंप दी गई हैं। चुनाव आयोग ने अपने अतिरिक्त हलफनामे में बताया है कि बिहार में लगभग 65 लाख मतदाताओं ने अपने दस्तावेज नहीं दिए हैं, इसलिए 1 सितंबर तक वे अपने दावे और आपत्तियां दर्ज करा सकते हैं। आयोग ने यह भी वचन दिया है कि सभी दावों का निस्तारण सात कार्यदिवसों में किया जाएगा। जाहिर है, अगर विवादों का निपटारा नहीं हुआ, तो एक बड़ी संख्या में लोग वोट से वंचित हो जाएंगे। ऐसे में, सवाल यह उठेगा कि विधानसभा में उनका जन- प्रतिनिधि कौन होगा? सुप्रीम कोर्ट पहले ही यह स्पष्ट कर चुका है कि नागरिकता तय करना आयोग का अधिकार नहीं तो क्या एक बड़ी आबादी बिना प्रतिनिधि के रहेगी ? स्वाभाविक ही यह एक बड़ा राजनीतिक मुद्दा बन गया है और सिर्फ बिहार ही नहीं, देशव्यापी मुद्दा बन चुका है। सुप्रीम कोर्ट में इस मामले की सुनवाई चल रही है और अब उसके अंतिम फैसले पर पूरे देश की निगाहें टिकी हैं।

एसआईआर इतना विवादास्पद कभी नहीं होता, अगर आयोग ने ऐन विधानसभा चुनाव से पहले इतनी बड़ी कवायद शुरू न की होती। सुप्रीम कोर्ट भी इस प्रक्रिया के समय पर सवाल उठा चुका है। यही नहीं, इस प्रक्रिया के अहम भागीदार राजनीतिक दलों के साथ आयोग ने समन्वय के बजाय टकराव का रवैया अपनाया, जबकि खुद आयोग के आंकड़े इस बात की तस्दीक करते हैं कि चंद हजार मतों के फर्क से कई राज्यों में सरकारों का भविष्य तय हुआ है। बिहार में तो 65 लाख वोटों का सवाल है। शायद यह पहली बार है, जब देश में मतदाता सूची को लेकर इतने बड़े पैमाने पर शक शुब्हे जताए जा रहे हैं। वह भी तब, जब हम डिजिटल युग में हैं। कई राज्यों में मतदाता सूची से छेड़छाड़ के आरोप लग रहे हैं और अलग-अलग पार्टियों द्वारा दस्तावेजी सुबूत भी पेश किए जा रहे हैं। मुमकिन है कि इनमें से बहुत सारे आरोप राजनीति या हार की खीझ व भय से प्रेरित हों, मगर चुनाव आयोग का रवैया भी विवाद को सुलझाने वाला होना चाहिए, उलझाने वाला नहीं।

Date: 11-08-25

भारत-चीन संबंधों की नई परीक्षा

सुजान चिनॉय, (महानिदेशक एमपीआईडीएसए)

जुलाई की शुरुआत में मैं चीन की यात्रा पर था। इस दौरान मुझे भारत के बारे में बीजिंग की सोच को समझने के लिए वहां के कई रसूखदार लोगों से बातचीत करने का अवसर मिला। इसी दौरान मुझे राष्ट्रपति ट्रंप के मौजूदा अमेरिका के प्रति चीन के रुख की झलक भी मिली। चीनी विद्वानों और बुद्धिजीवियों के

बीच यह आम राय थी कि राष्ट्रपति ट्रंप की नीतियों ने भारी अनिश्चितता पैदा कर दी है और वह वैश्वीकरण की संकल्पना के खिलाफ कदम उठा रहे हैं।

अमेरिका और चीन के बीच प्रतिस्पर्द्धा की मूल वजह प्रौद्योगिकी है। साइबर प्रौद्योगिकी और कृत्रिम बुद्धिमत्ता (एआई) इस जटिलता को और बढ़ा रही हैं। बीजिंग में लोगों का रुख अमेरिका के प्रति बाइडन प्रशासन की तुलना में अधिक आक्रामक और अपने को लेकर ज्यादा आश्वस्तकारी था। व्यापक तौर पर यही धारणा थी कि अमेरिका अब पतन की ओर अग्रसर है। विडंबना यह है कि ये लोग ट्रंप की टैरिफ जंग और 'सौदेबाजी' की उनकी प्रवृत्ति को चीन के हितों की रक्षा के लिहाज से एक बेहतर मौके के तौर पर देख रहे थे।

जब चीन के वैश्विक नेतृत्व को लेकर मैंने उनका रुख जानना चाहा तो बीजिंग में इस बाबत 'जीरो सम अप्रोच' दिखा। इस नजरिये में एक का लाभ दूसरे की हानि की कीमत पर होता है। उनका मानना था कि 'अमेरिका के अनिवार्य पतन पर ही वैश्विक नेता के रूप में चीन का अवश्यंभावी उदय' निर्भर है। वहां सभी जगहों पर अमेरिका के प्रति स्पष्ट नाराजगी दिखी। उनका मानना था कि वाशिंगटन आज जो भुगत रहा है, उसका वह हकदार है। चीनी विद्वान और विशेषज्ञ इस बात से आश्वस्त जान पड़ रहे थे कि दुनिया क्रमशः अमेरिका और चीन के नेतृत्व वाले दो खेमों में बंटी हुई है और मौजूदा समय भारत को यह मौका दे रहा है कि वह चीन के साथ हाथ मिलाने में हिचक न दिखाए।

जहां तक भारत और चीन के रिश्तों की बात है, तो इस पर कमोबेश आम सहमति दिखी कि पिछले अक्तूबर में भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और चीन के राष्ट्रपति शी जिनपिंग के बीच हुई बैठक के बाद संबंध सुधरे हैं। हालांकि, यह रिश्ता अब भी एक नाजुक मोड़ पर खड़ा है। मगर उनका मानना था कि अभी जो काम सबसे जरूरी है, वह यह है कि जो लाभदायक स्थिति बनी है, उसको बनाए रखा जाए और संबंधों को सामान्य बनाने की दिशा में काम किया जाए। कई चीनी बौद्धिकों का मानना था कि लंबित मुद्दों और मतभेदों के बावजूद दोनों पक्षों को बाकी के क्षेत्रों में आपसी सहयोग बढ़ाना चाहिए। उन्होंने चीन के इस दृष्टिकोण को दोहराया कि द्विपक्षीय संबंधों को 'किसी तीसरे देश की राय' के आधार पर तय नहीं किया जाना चाहिए।

उन्होंने सुझाव दिया कि चीन और भारत को अपने आर्थिक संबंध गहरे करने चाहिए। जैसे एआई में 'ट्विन इंजन' साझेदारी (साझा लक्ष्यों के लिए दोनों का मिलकर काम करना) की संभावनाओं पर बात होनी चाहिए। शी जिनपिंग ने अक्तूबर 2023 में वैश्विक एआई गवर्नेंस पहल शुरू की थी। चीन ने हाल ही में शंघाई में विश्व कृत्रिम बुद्धिमत्ता सहयोग संगठन का मुख्यालय खोलने की दिशा में कदम उठाने का एलान किया है। उन्होंने कहा, 'बाह्य अंतरिक्ष' एक और क्षेत्र है, जहां दोनों पक्ष सहयोग कर सकते हैं। चीन के विशेषज्ञ शंघाई सहयोग संगठन (एससीओ) और ब्रिक्स मंचों के जरिये द्विपक्षीय सहयोग को आगे बढ़ाने के इच्छुक दिखाई दिए। ऐसी खबरें हैं कि प्रधानमंत्री मोदी इस माह के अंत में शंघाई सहयोग संगठन के शिखर सम्मेलन में भाग लेने चीन जा सकते हैं।

एक-दूसरे देश में पनपी आम धारणाओं पर भी बातें हुईं। चीनी वार्ताकारों ने माना कि हाल-फिलहाल में यह खाई चौड़ी हुई है। दुखद सीमा विवाद के अलावा, पाकिस्तान के साथ चीन की बढ़ती नजदीकियों ने, जो ऑपरेशन सिंदूर के दौरान कहीं अधिक स्पष्ट दिखीं, भारत में उसके प्रति नकारात्मक धारणा को और मजबूत किया है। उनका कहना था कि प्रतिद्वंद्विता हमारी स्थायी नियति नहीं बननी चाहिए। उनका यह भी मानना था कि वर्तमान भू-राजनीतिक उतार-चढ़ाव दोनों देशों को मौका दे रहा है कि वे मिलकर काम करें। कुछ चीनी विशेषज्ञों का मानना था कि भारत के औद्योगिक विकास को किसी भी अन्य देश की तुलना में चीन के साथ मजबूत आर्थिक साझेदारी से अधिक फायदा मिलेगा। उनके मुताबिक, 'ईपीसी' (इंजीनियरिंग, खरीद और निर्माण) के क्षेत्र में भारत को आगे बढ़ने में चीन मदद कर सकता है।

साल 2020 में गलवान में हुई हिंसक झड़प के बाद संबंधों में आई गिरावट से पहले भारत में चीन की अच्छी उपस्थिति थी और यह बुनियादी ढांचे से जुड़ी परियोजनाओं से लेकर बंदरगाहों, दूरसंचार, यहां तक कि दुर्लभ तत्वों व एल्यूमिनियम शोधन तक में दिखाई पड़ती थी। तीसरे देशों सहित चीन के साथ संभावित ऊर्जा सहयोग पर भी जोर दिया गया, साथ ही ग्लोबल साउथ में प्रौद्योगिकी हस्तांतरण पर भी हमारी बात हुई।

कुल मिलाकर, भारत के प्रति बीजिंग का नजरिया सकारात्मक, लेकिन अनिश्चित दिखाई पड़ा। बीजिंग का रणनीतिक रूप से प्रभावशाली तबका भारत के साथ जुड़े किसी भी मुख्य मुद्दे पर झुके बिना, द्विपक्षीय संबंधों की उलझन को सुलझाने के प्रति उत्सुक दिखाई दिया। हालांकि, समानता के सिद्धांत की प्रशंसा करते हुए भी कुछ लोगों ने अपने अहंकार का परिचय दिया। और यह बात संकेत से कहीं अधिक मुखर होकर सामने आ रही थी कि भारत को अब चीन की वैश्विक श्रेष्ठता स्वीकार कर लेनी चाहिए।

एक खीझ भरा नजरिया यह भी था कि भारत को हिंद महासागर में चीनी नौसैनिक व अनुसंधान जहाजों की मौजूदगी या यात्राओं पर सवाल उठाने या उनको बाधित करने का अधिकार नहीं है, क्योंकि बीजिंग इसको अपनी बढ़ती भागीदारी और हितों के अनुरूप एक सामान्य गतिविधि मानता है।

बीजिंग में जिस तरह की सोच मैंने देखी, उसको ध्यान में रखते हुए मुझे यह कहने में कोई संकोच नहीं है कि 'ट्रैक 2 वार्ताएं' (गैर-सरकारी व्यक्तियों में होने वाली मेल-मुलाकात) बेहद उपयोगी हैं, खासकर जब अमेरिका और चीन दोनों के साथ हमारे संबंधों की कड़ी परीक्षा हो रही है। भारत के लिए इस समय यही उचित होगा कि वह अपने राष्ट्रीय हितों की रक्षा के लिए इन दोनों देशों के साथ मिलकर काम करने का कोई ऐसा तरीका तलाशे, जिसमें किसी के साथ हमारी अपेक्षा बहुत बढ़ी हुई न हो।